नईदुनिया

संपादकीय

ईपीएफ सीमा 25,000 हुई, अब पारदर्शी क्रियान्वयन की बारी

संगठित क्षेत्र के करोड़ों कर्मचारियों के लिए केंद्र सरकार का एक बड़ा फैसला राहत लेकर आया है। वित्त मंत्रालय ने कर्मचारी भविष्य निधि (ईपीएफ) और कर्मचारी पेंशन योजना (ईपीएस) के तहत वेतन सीमा को 15,000 रुपये से बढ़ाकर 25,000 रुपये करने की मंजूरी दे दी है। इसका सीधा मतलब है कि अब 25,000 रुपये तक बेसिक वेतन पाने वाले सभी कर्मचारी अनिवार्य रूप से ईपीएफ के दायरे में आएंगे और उन्हें रिटायरमेंट के बाद सामाजिक सुरक्षा का बेहतर कवच मिलेगा। लंबे समय से श्रमिक संगठन और कर्मचारी यह मांग उठा रहे थे कि 2014 से चली आ रही 15,000 रुपये की सीमा महंगाई और वेतन वृद्धि के हिसाब से पुरानी हो चुकी है। अब इस संशोधन से न केवल कवरेज बढ़ेगा, बल्कि भविष्य में पेंशन राशि में भी वृद्धि की उम्मीद है।

इस निर्णय का सबसे बड़ा लाभ उन लाखों कर्मचारियों को मिलेगा, जो अब तक इस सीमा के कारण ईपीएफ से बाहर थे। छोटे और मध्यम उद्योगों में काम करने वाले अनेक युवा 18,000 से 24,000 रुपये के बीच वेतन पाते हैं, लेकिन उन्हें ईपीएफ का लाभ नहीं मिल पाता था। अब यह कानूनी बाध्यता होगी और नियोक्ता को उनका अंशदान जमा करना होगा। दूसरा लाभ यह है कि जो कर्मचारी पहले से ईपीएफ में हैं, वे अब अधिक वेतन पर भी योगदान कर सकेंगे, जिससे उनका रिटायरमेंट फंड मजबूत होगा। तीसरा और सबसे महत्वपूर्ण पहलू पेंशन का है। ईपीएस में 8.33 प्रतिशत का योगदान इसी सीमा पर आधारित होता है। सीमा बढ़ने से पेंशन योग्य वेतन भी बढ़ेगा और इसका सीधा असर रिटायरमेंट के बाद मिलने वाली मासिक पेंशन पर पड़ेगा।

लेकिन किसी भी अच्छी योजना की सफलता उसके प्रभावी क्रियान्वयन पर निर्भर करती है। पहला सवाल यह है कि कंपनियां इस नए नियम को कितनी ईमानदारी से लागू करेंगी। अतीत बताता है कि कई नियोक्ता वेतन संरचना में बदलाव कर नियमों से बचने का प्रयास करते हैं। इसलिए श्रम विभाग और ईपीएफओ को सख्त निगरानी सुनिश्चित करनी होगी। दूसरा सवाल जागरूकता का है। बड़ी संख्या में कर्मचारी, विशेषकर ठेका और अस्थायी श्रमिक, अभी भी ईपीएफ और ईपीएस के नियमों से अनभिज्ञ हैं। इसलिए व्यापक प्रचार और प्रभावी हेल्पलाइन की व्यवस्था आवश्यक है। तीसरा सवाल तकनीकी तैयारियों का है। लाखों नए खाते खुलने से पोर्टल पर दबाव बढ़ेगा, इसलिए ईपीएफओ को अपनी डिजिटल व्यवस्था पहले से मजबूत करनी होगी।

यह फैसला औपचारिक रोजगार को भी बढ़ावा देगा। सामाजिक सुरक्षा मिलने से अधिक कर्मचारी संगठित क्षेत्र की ओर आकर्षित होंगे। हालांकि इससे कुछ उद्योगों पर अतिरिक्त लागत बढ़ेगी, लेकिन सामाजिक सुरक्षा को खर्च नहीं, बल्कि निवेश के रूप में देखना चाहिए। सरकार को छोटे उद्योगों के लिए आवश्यक सहयोग और चरणबद्ध व्यवस्था पर भी विचार करना चाहिए। वेतन सीमा को 25,000 रुपये करना समय की मांग के अनुरूप स्वागतयोग्य निर्णय है। अब जरूरत इस बात की है कि इसे पारदर्शिता, जवाबदेही और तकनीकी दक्षता के साथ लागू किया जाए, ताकि यह फैसला करोड़ों कर्मचारियों के भविष्य को वास्तव में सुरक्षित बना सके।

छात्रसंघ चुनाव: लोकतंत्र की पहली पाठशाला या राजनीति की नर्सरी?

9 साल बाद मध्य प्रदेश में वापसी, अब नई पीढ़ी के नेतृत्व और शिक्षा व्यवस्था-दोनों की होगी परीक्षा

मोहम्मद सादिक खान

मध्य प्रदेश में लगभग नौ वर्ष बाद छात्रसंघ चुनावों की वापसी होने जा रही है। उच्च न्यायालय में राज्य सरकार द्वारा सितंबर 2026 के पहले दस दिनों में चुनाव कराने का आश्वासन दिए जाने के बाद विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में चुनावी सरगर्मियां तेज हो गई हैं। वर्षों बाद लाखों विद्यार्थियों को अपने प्रतिनिधि चुनने का अवसर मिलेगा। यह केवल चुनाव नहीं, बल्कि लोकतंत्र, शिक्षा और भविष्य के नेतृत्व की भी एक महत्वपूर्ण परीक्षा होगी।

छात्रसंघ चुनावों का इतिहास भारत की लोकतांत्रिक यात्रा से गहराई से जुड़ा रहा है। स्वतंत्रता आंदोलन के दौर से लेकर जेपी आंदोलन और उसके बाद के दशकों तक विश्वविद्यालय केवल शिक्षा के केंद्र नहीं रहे, बल्कि सामाजिक और राजनीतिक चेतना के भी प्रमुख मंच बने। देश के अनेक बड़े नेताओं ने अपने सार्वजनिक जीवन की शुरुआत छात्र राजनीति से की। मध्य प्रदेश भी इसका अपवाद नहीं है। मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव, पूर्व मुख्यमंत्री शिवराज सिंह चौहान सहित अनेक वरिष्ठ नेताओं ने छात्र जीवन में संगठनात्मक और छात्र राजनीति के माध्यम से अपनी पहचान बनाई। यही कारण है कि छात्रसंघ चुनावों को लंबे समय से राजनीति की नर्सरी कहा जाता है।

छात्रसंघ का मूल उद्देश्य राजनीतिक दलों के लिए कार्यकर्ता तैयार करना नहीं, बल्कि विद्यार्थियों का लोकतांत्रिक प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करना है। पुस्तकालय, छात्रावास, प्रयोगशालाएं, छात्रवृत्ति, परिवहन, खेल सुविधाएं, सांस्कृतिक गतिविधियां, कैंटीन, फीस और परिसर की अन्य समस्याओं को प्रशासन तक प्रभावी ढंग से पहुंचाना छात्रसंघ की मूल जिम्मेदारी है।

इसके साथ ही छात्रसंघ युवाओं में नेतृत्व क्षमता, संवाद कौशल, संगठन क्षमता, निर्णय लेने की योग्यता और लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति सम्मान विकसित करता है। यही कारण है कि दुनिया के अधिकांश लोकतांत्रिक देशों में किसी न किसी रूप में छात्र प्रतिनिधित्व की व्यवस्था मौजूद है। मध्य प्रदेश में ये चुनाव इसलिए भी महत्वपूर्ण हैं क्योंकि प्रदेश में लगभग 70 से 80 विश्वविद्यालय और 2,700 से अधिक महाविद्यालय हैं, जहां लाखों विद्यार्थी अध्ययनरत हैं। वर्ष 2017 के बाद छात्रसंघ चुनाव नहीं हुए। इस दौरान कोरोना महामारी और अन्य प्रशासनिक कारणों से चुनाव लगातार टलते रहे। अब लगभग नौ वर्ष बाद चुनावों की वापसी विद्यार्थियों के लिए नई शुरुआत मानी जा रही है।

लेकिन इस बार की चुनौती पहले से कहीं बड़ी है। इतने लंबे अंतराल के बाद विश्वविद्यालय प्रशासन, पुलिस और उच्च शिक्षा विभाग के सामने शांतिपूर्ण, निष्पक्ष और पारदर्शी चुनाव कराने की जिम्मेदारी होगी। वर्ष 2005 में सुप्रीम कोर्ट के निर्देश पर पूर्व मुख्य चुनाव आयुक्त जे.एम. लिंग्डोह की अध्यक्षता में समिति गठित की गई।

समिति का उद्देश्य छात्रसंघ चुनावों में बढ़ते धनबल, बाहुबल, हिंसा और राजनीतिक हस्तक्षेप को नियंत्रित करना था। समिति ने स्पष्ट सिफारिशें दीं कि उम्मीदवार की न्यूनतम 75 प्रतिशत उपस्थिति हो, गंभीर आपराधिक पृष्ठभूमि न हो, चुनाव खर्च सीमित रहे, बाहरी व्यक्तियों का हस्तक्षेप न हो और पूरी चुनाव प्रक्रिया दस दिनों के भीतर पूरी कराई जाए। इन सिफारिशों को सुप्रीम कोर्ट ने स्वीकार किया और आज भी यही छात्रसंघ चुनावों का प्रमुख नियामक ढांचा माना जाता है। छात्र राजनीति को अक्सर राजनीति की प्रयोगशाला कहा जाता है। इसका कारण स्पष्ट है। विश्वविद्यालयों में ही युवा पहली बार सार्वजनिक भाषण देते हैं, चुनाव लड़ते हैं, संगठन बनाते हैं और लोकतांत्रिक प्रक्रिया को व्यवहार में समझते हैं।

मध्य प्रदेश की राजनीति में भी अनेक प्रभावशाली नेता छात्र राजनीति से आगे बढ़े। इससे यह साबित होता है कि छात्रसंघ चुनाव केवल कॉलेज तक सीमित प्रक्रिया नहीं, बल्कि भविष्य के नेतृत्व की आधारशिला भी हो सकते हैं।

लेकिन चिंताएं भी कम नहीं हैं। छात्रसंघ चुनावों के साथ कुछ गंभीर चुनौतियां भी जुड़ी रही हैं। देश के विभिन्न राज्यों में समय-समय पर चुनावों के दौरान हिंसा, झड़प, तोड़फोड़, अत्यधिक खर्च और राजनीतिक हस्तक्षेप की घटनाएं सामने आती रही हैं। मध्य प्रदेश में 2006 में उज्जैन के माधव कॉलेज में प्रोफेसर एच.एस. साबरवाल की मृत्यु से जुड़ी घटना आज भी छात्र राजनीति के इतिहास की एक महत्वपूर्ण और संवेदनशील घटना मानी जाती है। इसने यह सवाल खड़ा किया कि यदि चुनावों पर प्रभावी नियंत्रण न हो, तो शिक्षा का वातावरण प्रभावित हो सकता है। यही कारण है कि शिक्षाविदों और अभिभावकों का एक वर्ग चाहता है कि चुनाव पूरी तरह नियमों के दायरे में हों और परिसर की शैक्षणिक गरिमा किसी भी स्थिति में प्रभावित न हो।

आज का विद्यार्थी 1990 या 2000 के दशक के छात्र से काफी अलग है। डिजिटल तकनीक, सोशल मीडिया, स्टार्टअप संस्कृति, नवाचार और वैश्विक अवसरों ने युवाओं की सोच को व्यापक बनाया है। आज का छात्र केवल नारेबाजी नहीं, बल्कि रोजगार, कौशल विकास, अनुसंधान, बेहतर शिक्षा, डिजिटल सुविधाएं और पारदर्शी प्रशासन जैसे मुद्दों पर भी बात करता है।

यदि यही मुद्दे चुनावों का केंद्र बने, तो छात्रसंघ चुनाव भारतीय छात्र राजनीति को नई दिशा दे सकते हैं। इससे भविष्य में ऐसा नेतृत्व उभर सकता है, जो संवाद, विकास और समाधान आधारित राजनीति को आगे बढ़ाए। चुनाव कराना ही पर्याप्त नहीं होगा। सरकार को यह सुनिश्चित करना होगा कि प्रत्येक कॉलेज में निष्पक्ष मतदान, पर्याप्त सुरक्षा, सीसीटीवी निगरानी, शिकायत निवारण तंत्र, एंटी-रैगिंग व्यवस्था और लिंग्डोह समिति के नियमों का सख्ती से पालन हो। चुनाव प्रचार इस प्रकार हो कि नियमित पढ़ाई और परीक्षाएं प्रभावित न हों।

साथ ही छात्र संगठनों और राजनीतिक दलों की भी जिम्मेदारी है कि वे लोकतांत्रिक मर्यादाओं का पालन करें और व्यक्तिगत, जातीय या सांप्रदायिक ध्रुवीकरण से बचें। छात्रसंघ चुनावों का केंद्र छात्र हित होना चाहिए, न कि राजनीतिक शक्ति प्रदर्शन।

मध्य प्रदेश में छात्रसंघ चुनावों की वापसी केवल एक चुनावी कार्यक्रम नहीं, बल्कि उच्च शिक्षा और लोकतंत्र के लिए एक महत्वपूर्ण अवसर है। यदि यह प्रक्रिया पारदर्शी, शांतिपूर्ण और छात्र-केंद्रित रही, तो आने वाले वर्षों में प्रदेश को जिम्मेदार छात्र नेता, सक्षम जनप्रतिनिधि और लोकतांत्रिक मूल्यों में विश्वास रखने वाला नेतृत्व मिल सकता है। लेकिन यदि चुनाव धनबल, बाहुबल, हिंसा और अनावश्यक राजनीतिक हस्तक्षेप की भेंट चढ़ गए, तो इसका सबसे बड़ा नुकसान उन लाखों विद्यार्थियों को होगा, जिनका सपना केवल गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और बेहतर भविष्य है।

सितंबर 2026 के छात्रसंघ चुनाव इसलिए केवल प्रतिनिधियों का चुनाव नहीं होंगे, बल्कि यह तय करेंगे कि मध्य प्रदेश के विश्वविद्यालय लोकतंत्र की सशक्त पाठशाला बनेंगे या फिर राजनीतिक संघर्ष का नया अखाड़ा। आने वाला समय इस प्रश्न का उत्तर देगा।

आजकल

ब्रिक्स 2026 से मध्यप्रदेश को वैश्विक सांस्कृतिक पहचान का नया मंच

ब्रिक्स समूह अब केवल आर्थिक और राजनीतिक सहयोग तक सीमित नहीं रहा, बल्कि संस्कृति और पर्यटन को भी वैश्विक पहचान देने की दिशा में आगे बढ़ रहा है। वर्ष 2026 में मध्यप्रदेश के सांची में होने वाला ब्रिक्स पर्यटन एवं सांस्कृतिक सहयोग सम्मेलन इसी सोच का प्रतीक है। 8 और 9 अगस्त को आयोजित इस सम्मेलन में करीब 100 विदेशी प्रतिनिधि शामिल होंगे। विश्व धरोहर सांची स्तूप और भीमबेटका के शैलाश्रय इस आयोजन के प्रमुख आकर्षण होंगे। यह चयन मध्यप्रदेश की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत को वैश्विक मंच पर स्थापित करने की महत्वपूर्ण पहल है।

ब्रिक्स के विस्तारित स्वरूप में अब ब्राजील, रूस, भारत, चीन और दक्षिण अफ्रीका के साथ ईरान, सऊदी अरब, मिस्र, इथियोपिया और यूएई जैसे देश भी शामिल हैं। इन देशों की विशाल आबादी और आर्थिक क्षमता भारत के लिए पर्यटन, निवेश और सांस्कृतिक सहयोग की नई संभावनाएं खोलती है। सांची बौद्ध धर्म का महत्वपूर्ण केंद्र है, जबकि भीमबेटका मानव सभ्यता के प्राचीन इतिहास का सजीव प्रमाण प्रस्तुत करता है। ये दोनों स्थल भारत की सांस्कृतिक निरंतरता और विविधता का प्रभावशाली परिचय देंगे।

यह आयोजन राज्य की अर्थव्यवस्था के लिए भी लाभकारी साबित हो सकता है। अंतरराष्ट्रीय प्रतिनिधियों, मीडिया और पर्यटन उद्योग की भागीदारी से होटल, परिवहन, हस्तशिल्प और स्थानीय रोजगार को बढ़ावा मिलेगा। साथ ही भारत अपनी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत के माध्यम से वैश्विक मंच पर अपनी सॉफ्ट पावर को भी मजबूत कर सकेगा।

हालांकि, इस अवसर को स्थायी सफलता में बदलने के लिए आधारभूत ढांचे, परिवहन, सुरक्षा और आतिथ्य सेवाओं को अंतरराष्ट्रीय स्तर का बनाना होगा। स्थानीय जनजातीय संस्कृति, लोककला और शिल्प को भी प्रमुखता देकर मध्यप्रदेश की संपूर्ण सांस्कृतिक पहचान प्रस्तुत करनी होगी। यदि यह आयोजन दूरदर्शी योजना के साथ संपन्न हुआ, तो सांची और भीमबेटका विश्व पर्यटन के नए केंद्र बन सकते हैं और मध्यप्रदेश सांस्कृतिक कूटनीति का मजबूत आधार स्थापित कर सकता है।

कैंसर से जंग में नई उम्मीद: कोविड वाली तकनीक

चिकित्सा विज्ञान के इतिहास में कुछ मोड़ ऐसे आते हैं, जो आने वाली कई पीढ़ियों की दिशा तय कर देते हैं। कोविड-19 महामारी के दौरान दुनिया ने जिस गति से वैक्सीन बनाई और जिस नई तकनीक को अपनाया, उसने यह साबित कर दिया कि जब विज्ञान संकट को अवसर में बदलता है तो असंभव भी संभव हो जाता है। उसी मैसेंजर आरएनए तकनीक को अब वैज्ञानिक कैंसर के खिलाफ सबसे बड़े हथियार के रूप में विकसित कर रहे हैं। शुरुआती नतीजे इतने उत्साहजनक हैं कि विशेषज्ञ मान रहे हैं कि आने वाले वर्षों में कैंसर के इलाज का पूरा परिदृश्य बदल सकता है। मेलानोमा और ब्रेस्ट कैंसर पर हुए हालिया शोध और क्लीनिकल ट्रायल ने उम्मीद जगाई है कि जेनेटिक वैक्सीन के माध्यम से शरीर को इस तरह प्रशिक्षित किया जा सकता है कि वह कैंसर कोशिकाओं को शुरुआती चरण में ही पहचानकर नष्ट कर दे और मरीज को कीमोथेरेपी जैसी कष्टदायक प्रक्रिया से काफी हद तक राहत मिल सके।

इस शोध में भारतीय मूल के वैज्ञानिक डॉ. तेज कुमार पारीक और उनकी टीम की भूमिका महत्वपूर्ण मानी जा रही है। डॉ. पारीक लंबे समय से इस दिशा में काम कर रहे हैं कि कोविड वैक्सीन में जिस आरएनए प्लेटफॉर्म का उपयोग हुआ, उसी सिद्धांत को कैंसर के उपचार में कैसे लागू किया जाए। उनका तर्क सरल है। जिस तरह वायरस के प्रोटीन की पहचान कराकर शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली को सक्रिय किया गया था, उसी प्रकार कैंसर कोशिकाओं के विशेष मार्कर की जानकारी देकर प्रतिरक्षा तंत्र को उन्हें दुश्मन के रूप में पहचानने के लिए प्रशिक्षित किया जा सकता है।

अब तक कैंसर का उपचार बीमारी होने के बाद सर्जरी, रेडिएशन या दवाओं के माध्यम से उसे समाप्त करने पर आधारित था, जबकि यह नई तकनीक बीमारी की प्रगति को शुरुआती स्तर पर ही रोकने की दिशा में काम करती है। यही कारण है कि इसे चिकित्सा जगत में गेम चेंजर माना जा रहा है।

मेलानोमा त्वचा का सबसे आक्रामक कैंसर है और दुनिया भर में इसके मामले तेजी से बढ़ रहे हैं। वहीं ब्रेस्ट कैंसर महिलाओं में सबसे सामान्य कैंसर है। भारत में हर वर्ष बड़ी संख्या में महिलाएं इसकी चपेट में आती हैं और देर से जांच होने के कारण अनेक मामलों में बीमारी अंतिम चरण में पहुंच जाती है। इन दोनों कैंसर की सबसे बड़ी समस्या यह है कि शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली कैंसर कोशिकाओं को अपना ही हिस्सा मानकर उन पर हमला नहीं करती। जेनेटिक वैक्सीन इसी कमजोरी को दूर करने का प्रयास करती है। यह कैंसर कोशिकाओं की सतह पर मौजूद असामान्य प्रोटीन की जानकारी प्रतिरक्षा तंत्र को देती है और टी-सेल को सक्रिय करती है, ताकि वे ट्यूमर को बढ़ने से पहले ही नष्ट कर सकें।

प्रयोगशाला और पशुओं पर हुए परीक्षणों के परिणाम वैज्ञानिकों के लिए उत्साहवर्धक रहे हैं। डॉ. पारीक की टीम ने पाया कि वैक्सीन के बाद शरीर में कैंसर विरोधी टी-सेल की संख्या कई गुना बढ़ गई और मेमोरी सेल भी विकसित हुए। इसका अर्थ है कि भविष्य में यदि कैंसर कोशिकाएं दोबारा बनें, तो शरीर उन्हें तुरंत पहचानकर नष्ट कर सकेगा। मानव परीक्षण के शुरुआती चरण में मेलानोमा के कुछ मरीजों को इस वैक्सीन के साथ इम्यूनोथेरेपी दी गई। कई मरीजों में ट्यूमर का आकार काफी घट गया, जबकि कुछ में कैंसर के संकेत लगभग समाप्त हो गए। ब्रेस्ट कैंसर पर भी ट्रायल जारी हैं और शुरुआती परिणाम सकारात्मक हैं, हालांकि वैज्ञानिक अभी व्यापक परीक्षणों की आवश्यकता पर जोर दे रहे हैं।

भारत के लिए इस तकनीक का महत्व और भी अधिक है, क्योंकि यहां कैंसर के मरीजों की संख्या लगातार बढ़ रही है और इलाज का खर्च आम लोगों की पहुंच से बाहर है। यदि यह जेनेटिक वैक्सीन सफल होती है और कम लागत पर उपलब्ध कराई जा सके, तो यह स्वास्थ्य क्षेत्र में बड़ी क्रांति साबित हो सकती है। इसके साथ ही शुरुआती जांच और जागरूकता भी उतनी ही जरूरी है, क्योंकि आज भी बहुत से लोग कैंसर के शुरुआती लक्षणों को नजरअंदाज कर देते हैं।

इस तकनीक के सामने कुछ चुनौतियां भी हैं। पहली चुनौती इसकी दीर्घकालिक सुरक्षा को लेकर है। अब तक के परीक्षणों में कोई गंभीर दुष्प्रभाव सामने नहीं आया है, लेकिन बड़े पैमाने पर उपयोग से पहले और अधिक आंकड़ों की जरूरत होगी। दूसरी चुनौती उत्पादन और वितरण की है, क्योंकि आरएनए वैक्सीन को अत्यंत कम तापमान पर सुरक्षित रखना पड़ता है। तीसरी चुनौती इसकी लागत है। यदि यह तकनीक महंगी रही, तो इसका लाभ सीमित लोगों तक ही पहुंच पाएगा। इसलिए सरकार, वैज्ञानिक संस्थानों और निजी क्षेत्र को मिलकर इसे सुलभ और किफायती बनाने की दिशा में काम करना होगा।

फिर भी संभावनाएं इतनी व्यापक हैं कि इन्हें नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। वैज्ञानिक अब इस तकनीक को फेफड़ों, कोलन, अग्नाशय और प्रोस्टेट कैंसर पर भी आजमा रहे हैं। प्रत्येक कैंसर के लिए अलग वैक्सीन विकसित करनी होगी, लेकिन तकनीकी आधार एक ही रहेगा। आम लोगों के लिए संदेश स्पष्ट है कि घबराने के बजाय नियमित जांच कराएं, स्वस्थ जीवनशैली अपनाएं और वैज्ञानिक तथ्यों पर भरोसा रखें। मेलानोमा और ब्रेस्ट कैंसर के लिए विकसित हो रही यह जेनेटिक वैक्सीन केवल एक नई दवा नहीं, बल्कि चिकित्सा विज्ञान की नई सोच का प्रतीक है। अभी मंजिल दूर है, लेकिन उम्मीद की किरण पहले से कहीं अधिक मजबूत दिखाई दे रही है।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

बचपन के जख्म बनते हैं बड़े अपराध की जड़ ...

उपेक्षा और शोषण झेलने वाले बच्चे अपराध की राह पर

समाज में अक्सर यह मान लिया जाता है कि बचपन मासूमियत और खुशियों का समय होता है, लेकिन हकीकत इससे बिल्कुल अलग है। आज जेलों में बंद कैदियों पर हुए एक बड़े अध्ययन ने जो तस्वीर सामने रखी है, वह पूरे समाज को झकझोर देने वाली है। अध्ययन में पाया गया कि जेल में बंद करीब 50 प्रतिशत कैदियों ने अपने बचपन में किसी न किसी रूप में भावनात्मक, शारीरिक या यौन शोषण झेला था। यही वे जख्म थे, जो समय के साथ भरने के बजाय और गहरे होते गए तथा अंततः उन्हें अपराध की दुनिया की ओर धकेल दिया। विशेषज्ञ मानते हैं कि बचपन में मिली उपेक्षा और हिंसा का असर केवल कुछ दिनों या महीनों तक नहीं रहता, बल्कि व्यक्ति के पूरे व्यक्तित्व को प्रभावित करता है। इसलिए यदि हम अपराध मुक्त समाज चाहते हैं, तो सबसे पहले बच्चों का बचपन सुरक्षित करना होगा।

दिल्ली की तिहाड़ जेल और देश की अन्य जेलों में किए गए इस अध्ययन में कैदियों से उनके बचपन के अनुभवों के बारे में विस्तार से पूछा गया। सवाल थे-क्या बचपन में मारपीट का सामना करना पड़ा? क्या माता-पिता ने पर्याप्त प्यार और ध्यान दिया? क्या कभी यौन शोषण का शिकार हुए? क्या भूखे रहना या इलाज न मिलने जैसी परिस्थितियों का सामना करना पड़ा? इन सवालों के जवाब चौंकाने वाले थे। लगभग हर दूसरे कैदी की कहानी में बचपन की कोई न कोई त्रासदी छिपी थी। किसी ने पिता की मार झेली, किसी ने मां की उपेक्षा, तो कई ऐसे भी थे जिन्हें घर के भीतर ही यौन शोषण का सामना करना पड़ा और डर व शर्म के कारण वे कभी कुछ कह नहीं सके। यही वह बिंदु है, जहां से एक मासूम का जीवन अपराध की दिशा में मुड़ने लगता है।

अध्ययन के अनुसार जेल में बंद 61 प्रतिशत कैदी हत्या के मामलों में सजा काट रहे हैं। 2.6 प्रतिशत लोग नशे और तस्करी से जुड़े अपराधों में, 11 प्रतिशत चोरी, डकैती और लूटपाट के मामलों में तथा 4.8 प्रतिशत महिलाओं से जुड़े अपराधों में बंद हैं। वहीं 18.9 प्रतिशत कैदी नशे के आदी पाए गए। इन सभी मामलों के पीछे एक समान कड़ी बचपन का आघात था। मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि जब किसी बच्चे को लगातार गाली, मारपीट और उपेक्षा मिलती है, तो उसके भीतर गुस्सा और कुंठा घर कर जाती है। वह दुनिया को अपना दुश्मन समझने लगता है और धीरे-धीरे गलत संगत तथा हिंसक व्यवहार की ओर बढ़ जाता है।

उपेक्षा के कई रूप होते हैं और सभी समान रूप से खतरनाक हैं। शारीरिक उपेक्षा का अर्थ है समय पर भोजन, इलाज, कपड़े और शिक्षा से वंचित रखना। भावनात्मक उपेक्षा का मतलब है बच्चे की बात न सुनना, उसे स्नेह न देना, उसकी उपलब्धियों की सराहना न करना और लगातार दूसरों से तुलना करना। शारीरिक शोषण में मारपीट और चोट पहुंचाना शामिल है, जबकि यौन शोषण सबसे भयावह है, क्योंकि यह बच्चे के मन और शरीर दोनों को गहरे स्तर पर तोड़ देता है। शोध बताते हैं कि ऐसे बच्चों में अवसाद, आत्महत्या के विचार, नशे की लत और आक्रामक व्यवहार की संभावना अधिक होती है।

सबसे चिंताजनक बात यह है कि समाज आज भी इस समस्या को गंभीरता से नहीं ले रहा। माता-पिता काम और तनाव में उलझे हैं, स्कूलों में काउंसलिंग की व्यवस्था सीमित है और पड़ोसी घरेलू हिंसा को निजी मामला मानकर अनदेखा कर देते हैं। परिणाम यह होता है कि बच्चा अकेला पड़ जाता है और अपने दर्द को भीतर ही भीतर दबाए रखता है। बाद में जब वही बच्चा अपराध करता है, तो समाज केवल उसे दोषी ठहराता है, लेकिन उसके टूटे हुए बचपन पर विचार नहीं करता।

यदि समय रहते परिवार, स्कूल और समाज मिलकर बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य पर ध्यान दें, तो अनेक अपराध रोके जा सकते हैं। माता-पिता को समझना होगा कि अनुशासन के नाम पर हिंसा बच्चों के भविष्य को नुकसान पहुंचाती है। बच्चों से संवाद, विश्वास और अपनापन जरूरी है। स्कूलों में प्रभावी काउंसलिंग व्यवस्था हो और सरकार घरेलू हिंसा से प्रभावित बच्चों की पहचान कर उन्हें समय पर संरक्षण और परामर्श उपलब्ध कराए। बाल संरक्षण तंत्र और पुलिस को भी ऐसे मामलों में संवेदनशील और त्वरित कार्रवाई करनी चाहिए।

समाज की भूमिका भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। यदि किसी बच्चे के साथ हिंसा या शोषण का संदेह हो, तो उसे नजरअंदाज करने के बजाय मदद के लिए आगे आना चाहिए। मीडिया और मनोरंजन माध्यमों को भी बच्चों की सुरक्षा और मानसिक स्वास्थ्य पर जागरूकता बढ़ाने वाले कार्यक्रमों को प्राथमिकता देनी चाहिए। बचपन के घाव दिखाई नहीं देते, लेकिन उनके परिणाम पूरे समाज को भुगतने पड़ते हैं। इसलिए बच्चों को प्यार, सुरक्षा, सम्मान और विश्वास से भरा वातावरण देना ही एक सुरक्षित, संवेदनशील और अपराध मुक्त भारत की सबसे मजबूत नींव है।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)